बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय दस

अस्तित्व -संबंधी दृष्टिकोण : अच्छे का चुनाव करना

Manuscript

thirdmill
Biblical Education. For the World. For Free.

© थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ 2012 के द्वारा

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी भाग को प्रकाशक, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़, इनकोरपोरेशन, 316, लाइव ओक्स बुलेवार्ड, कैसलबरी, फ्लोरिडा 32707 की लिखित अनुमति के बिना समीक्षा, टिप्पणी, या अध्ययन के उद्देश्यों के लिए संक्षिप्त उद्धरणों के अतिरिक्त किसी भी रूप में या किसी भी तरह के लाभ के लिए पुनः प्रकशित नहीं किया जा सकता।

पवित्रशास्त्र के सभी उद्धरण बाइबल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की हिन्दी की पवित्र बाइबल से लिए गए हैं। सर्वाधिकार © The Bible Society of India

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ की सेवकाई के विषय में

1997 में स्थापित, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ एक लाभनिरपेक्ष सुसमाचारिक मसीही सेवकाई है जो पूरे संसार के लिए मुफ्त में बाइबल आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

संसार के लिए मुफ़्त में बाइबल आधारित शिक्षा।

हमारा लक्ष्य संसार भर के हज़ारों पासवानों और मसीही अगुवों को मुफ़्त में मसीही शिक्षा प्रदान करना है जिन्हें सेवकाई के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है। हम इस लक्ष्य को अंग्रेजी, अरबी, मनडारिन, रूसी, और स्पैनिश भाषाओं में अद्वितीय मल्टीमीडिया सेमिनारी पाठ्यक्रम की रचना करने और उन्हें विश्व भर में वितरित करने के द्वारा पूरा कर रहे हैं। हमारे पाठयक्रम का अनुवाद सहभागी सेवकाइयों के द्वारा दर्जन भर से अधिक अन्य भाषाओं में भी किया जा रहा है। पाठ्यक्रम में ग्राफिक वीडियोस, लिखित निर्देश, और इंटरनेट संसाधन पाए जाते हैं। इसकी रचना ऐसे की गई है कि इसका प्रयोग ऑनलाइन और सामुदायिक अध्ययन दोनों संदर्भों में स्कूलों, समूहों, और व्यक्तिगत रूपों में किया जा सकता है।

वर्षों के प्रयासों से हमने अच्छी विषय-वस्तु और गुणवत्ता से परिपूर्ण पुरस्कार-प्राप्त मल्टीमीडिया अध्ययनों की रचना करने की बहुत ही किफ़ायती विधि को विकसित किया है। हमारे लेखक और संपादक धर्मवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षित शिक्षक हैं, हमारे अनुवादक धर्मवैज्ञानिक रूप से दक्ष हैं और लक्ष्य-भाषाओं के मातृभाषी हैं, और हमारे अध्यायों में संसार भर के सैकड़ों सम्मानित सेमिनारी प्रोफ़ेसरों और पासवानों के गहन विचार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त हमारे ग्राफिक डिजाइनर, चित्रकार, और प्रोडयूसर्स अत्याधुनिक उपकरणों और तकनीकों का प्रयोग करने के द्वारा उत्पादन के उच्चतम स्तरों का पालन करते हैं।

अपने वितरण के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए थर्ड मिलेनियम ने कलीसियाओं, सेमिनारियों, बाइबल स्कूलों, मिशनरियों, मसीही प्रसारकों, सेटलाइट टेलीविजन प्रदाताओं, और अन्य संगठनों के साथ रणनीतिक सहभागिताएँ स्थापित की हैं। इन संबंधों के फलस्वरूप स्थानीय अगुवों, पासवानों, और सेमिनारी विद्यार्थियों तक अनेक विडिओ अध्ययनों को पहुँचाया जा चुका है। हमारी वेबसाइट भी वितरण के माध्यम के रूप में कार्य करती है और हमारे अध्यायों के अतिरिक्त सामग्रियों को भी प्रदान करती है, जिसमें ऐसे निर्देश भी शामिल हैं कि अपने शिक्षण समुदाय को कैसे आरंभ किया जाए।

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज a 501(c)(3) कारपोरेशन के रूप में IRS के द्वारा मान्यता प्राप्त है। हम आर्थिक रूप से कलीसियाओं के टैक्स-डीडक्टीबल योगदानों, संस्थानों, व्यापारों और लोगों पर आधारित हैं। हमारी सेवकाई के बारे में अधिक जानकारी के लिए और यह जानने के लिए कि आप किस प्रकार इसमें सहभागी हो सकते हैं, कृपया हमारी वैबसाइट http://thirdmill.org को देखें।

विषय-वस्तु

परिचय....1
ज्ञान प्राप्त करना....2
अनुभव....2
भौतिक....3
मानसिक....4
कल्पना....5
रचनात्मकता....5
समय....6
दूरी....7
ज्ञान का मूल्यांकन....8
तर्क-वितर्क....8
विवेक....10
मनोभाव....11
ज्ञान को लागू करना....13
हृदय....14
समर्पण....14
अभिलाषाएं....15
इच्छा....17
निष्कर्ष....19

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय दस

अस्तित्व -संबंधी दृष्टिकोण : अच्छे का चुनाव करना

परिचय

क्या आपने कभी उन बहानों के बारे में सोचा है जो लोग सही कार्य न करने पर बनाते हैं? जब बच्चे अपना गृहकार्य नहीं करते, या कर्मचारी अपना काम नहीं करते, या मित्र अपने वादे पूरे नहीं करते, तो वे क्या कहते हैं? शायद उनके पास जरूरी जानकारी नहीं थी, इसलिए उनका बहाना होता है, "मुझे पता नहीं था"। या फिर जो जानकारी उनके पास थी वे उसे समझ नहीं पाए, तो वे कहते हैं, "मुझे नहीं पता मुझे क्या करना था।" या फिर शायद उन्होंने गलत कार्य करने को महत्व दिया, इसलिए वे मान लेते हैं, "मैं यह करना नहीं चाहता था।" सच्चाई यह है कि अंत में सही कार्य करने के लिए हमें उस दौरान कई अन्य कार्य करने होते हैं। हमें सही जानकारी लेनी होती है, हमें इसकी सही जांच करनी होती है, और हमें इसे सही रूप में लागू करना होता है।

बाइबल पर आधारित निर्णय लेना श्रृंखला का यह हमारा दसवां अध्याय है। और हमने इस अध्याय का नाम दिया है, "अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण : अच्छे का चुनाव करना"। इस अध्याय में, हम जांचेंगे कि मसीही किस प्रकार वास्तव में नैतिक निर्णय लेते हैं- हम किस प्रकार अच्छे का चुनाव करते हैं। और हम इस बात पर ख़ास ध्यान देंगे कि इन चुनावों में हमारी व्यक्तिगत योग्यताएं और सामर्थ्य किस प्रकार योगदान देती हैं।

इन सारे अध्यायों में हम सिखाते आ रहे हैं कि नैतिक निर्णय लेना एक व्यक्ति द्वारा एक परिस्थिति में परमेश्वर के वचन को लागू करना होता है। और हम इस प्रारूप के तीन अवयवों को दर्शाते रहे हैं : परमेश्वर का वचन, परिस्थिति, और व्यक्ति।

जब हम नैतिक शिक्षा को परमेश्वर के वचन पर केन्द्रित होकर देखते हैं, तो हम निर्देशात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग कर रहे हैं। और जब हम वास्तविकताओं, लक्ष्यों, और माध्यमों जैसी परिस्थितियों पर ध्यान देते हैं, तो हम परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण का प्रयोग कर रहे हैं। अंत में, जब हम नैतिक निर्णय लेने वाले व्यक्तियों पर ध्यान देते हैं, तो हम विषयों को अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण से देख रहे हैं। ये सारे दृष्टिकोण हमें परमेश्वर के बारे में, हमारी परिस्थिति के बारे में, और हमारे अपने बारे में जानकारी देने के द्वारा नैतिक निर्णयों में सहायता करते हैं। और ये सब गहराई से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस अध्याय में हम पुनः अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण को देखेंगे, इस बार हम उन रूपों को देखेंगे जिनमें हम हमारी व्यक्तिगत क्षमताओं का प्रयोग अच्छा कार्य करने का चुनाव करने की प्रक्रिया में करते हैं।

मनुष्य नैतिक निर्णय लेने में भिन्न सामर्थ्यों और योग्यताओं का प्रयोग करते हैं। इस अध्याय में हम इन योग्यताओं को हमारी अस्तित्व-संबंधी क्षमताएँ कहेंगे। इन क्षमताओं का वर्णन करने के कई तरीके हैं, परन्तु हम उन्हें सात सामर्थ्यों और योग्यताओं में सारगर्भित करेंगे : अनुभव, कल्पना, विवेक, अन्तःकरण, भावनाएं, हृदय, और इच्छा। अब इन अस्तित्व-संबंधी क्षमताओं में ऐसा बहुत कुछ है जो एक-दूसरे में भी पाया जाता है। ये सब गहराई से एक-दूसरे से जुड़े हुई होती हैं और एक-दूसरे पर निर्भर रहती हैं। परन्तु फिर भी, हरेक अपने ही तरीके से कार्य करती हैं, अतः नैतिक शिक्षा में प्रत्येक क्षमता की मुख्य भूमिका पर ध्यान देना सहायक है।

इस अध्याय में हम हमारी अस्तित्व-संबंधी क्षमताओं को इस प्रकार समूह में रखेंगे जिस प्रकार से वे सामान्यतः नैतिक निर्णय लेने में हमारी सहायता करती हैं। ये समूह कुछ बनावटी हैं, क्योंकि हमारी सारी योग्यताएं या सामर्थ्य हर कदम पर एक साथ कार्य करती हैं। परन्तु यह भी सत्य है कि हम कुछ कार्यों को

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

करने के लिए कुछ क्षमताओं पर ही मुख्यतः निर्भर रहते हैं, अतः ये विभाजन सहायक हो सकते हैं जब हम नैतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में सोचते हैं।

जब हम अच्छे का चुनाव करने की धारणा की जांच करते हैं, तो हम ध्यान देंगें कि किस प्रकार हमारी अस्तित्व-संबंधी क्षमताएं निर्णय लेने की प्रक्रिया में तीन मुख्य चरणों में काम करती हैं। पहले, हम उन मुख्य क्षमताओं पर ध्यान देंगे जिनका प्रयोग हम हमारी परिस्थिति के बारे में, हमारे अपने बारे में, और परमेश्वर के वचन के बारे में ज्ञान अर्जित करने के लिए करते हैं। दूसरा, हम उन सामर्थ्यों और योग्यताओं पर ध्यान देंगे जिनका प्रयोग हम विशिष्ट रूप से इस ज्ञान को जांचने या इसका मूल्यांकन करने के लिए करते हैं। और तीसरा, हम उन पर ध्यान देंगे जिनका प्रयोग हम तब करते हैं जब हम नैतिक निर्णय लेने के द्वारा हमारे ज्ञान को लागू कर रहे होते हैं। आइए, उन मुख्य क्षमताओं के साथ आरंभ करें जिनका प्रयोग हम ज्ञान प्राप्त करने के समय करते हैं।

ज्ञान प्राप्त करना

हम उन दो आधारभूत क्षमताओं पर ध्यान देंगे जो ज्ञान को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण हैं। पहला, हम ध्यान देंगे कि हम किस प्रकार अनुभव पर निर्भर रहते हैं। और दूसरा, हम देखेंगे कि किस प्रकार हमारी कल्पना हमारे ज्ञान में योगदान देती है। आइए, पहले हम यह देखें कि अनुभव किस प्रकार से हमें वह ज्ञान अर्जित करने में सहायता करता है जिसका नैतिक निर्णय लेने में हमारे पास होना आवश्यक है।

अनुभव

चाहे कितना भी स्पष्ट यह प्रतीत होता हो, फिर भी नैतिक शिक्षा के अध्ययन में यह याद रखना आवश्यक है कि मनुष्य कई प्रकार के अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करता है। हम लोगों को जानते हैं क्योंकि हमारे पास उनसे भेंट करने, उनसे बात करने आदि का अनुभव है। हम जानते हैं कि मनोभाव कैसे होते हैं क्योंकि हमने भय, प्रेम, क्रोध आदि का अनुभव किया है। हम कुछ घटनाओं को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं क्योंकि हम स्वयं उनका अनुभव करते हुए जीवन जीते हैं। हम कुछ घटनाओं के बारे में अप्रत्यक्ष रूप से जानते हैं क्योंकि हमारे पास उनके बारे में पढने या किसी और माध्यम से उसके बारे में जानने का अनुभव रहा है। जब हम इस अध्याय में अनुभव के बारे में बात करते हैं, तो हमारे मन में ऐसे और कई अन्य प्रकार के अनुभव रहेंगे।

इन सारे अनुभवों को सारगर्भित करने में हमारी सहायता हेतु हम अनुभव को लोगों, वस्तुओं और घटनाओं की जानकारी या उनके बारे में जागरूकता के रूप में परिभाषित करेंगे। प्रत्येक अनुभव किसी न किसी प्रकार का ज्ञान उत्पन्न करता है, फिर चाहे वह परमेश्वर के बारे में हो, हमारे चारों ओर के संसार के बारे में हो या हमारे अपने बारे में हो। और यही ज्ञान बुराई से अच्छाई को पहचानने में हमारी सहायता करता है।

अब जैसे हम अनुभव पर और अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे, तो हम दो दिशाओं में देखेंगे। पहली, हम हमारे चारों ओर के संसार के साथ हमारे भौतिक या संवेदी व्यवहार पर ध्यान देंगे। और दूसरा, हम हमारे उन मानसिक अनुभवों को संबोधित करेंगे जो हमारे मनों में है। आइए, हम हमारे चारों ओर के संसार के साथ हमारे भौतिक व्यवहार से आरंभ करें।

भौतिक

संसार के साथ हमारा भौतिक व्यवहार हमारे संवेदी बोध के माध्यम से होता है- हमारे देखने, सुनने, सूंघने, चखने और छूने के द्वारा। ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ उन मुख्य तरीकों का प्रतिनिधित्व करती हैं जिनके द्वारा हम परमेश्वर, लोगों, वस्तुओं, हमारे वातावरण एवं अन्य कई घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। उदाहरण के तौर पर, हम दूसरे लोगों के बारे में जानते हैं क्योंकि हम उन्हें देखते हैं, और उनसे बात करते हैं, और उन्हें स्पर्श करते हैं। जब हम घटनाओं को होता हुआ देखते हैं, उनके बारे में पढ़ते हैं, या उनके बारे में बातों को सुनते हैं, तो हम उनके बारे में सीखते हैं। हम परमेश्वर के वचन को पढने के द्वारा, दूसरों से उसके बारे में सुनने के द्वारा, और उसकी सृष्टि के उत्कर्ष को देखने के द्वारा परमेश्वर की महिमा के बारे में सीखते हैं।

निस्संदेह, पवित्रशास्त्र कभी-कभी हमारी ज्ञानेन्द्रियों की सीमितता की ओर भी हमारे ध्यान को आकर्षित करता है। उदहारण के लिए, 2 कुरिन्थियों 5:7 में पौलुस ने लिखा :

> **क्योंकि हम रूप को देखकर नहीं, पर विश्वास से चलते हैं। (2 कुरिन्थियों 5:7)**

जैसा कि पौलुस ने यहाँ पर दर्शाया, हमारी इन्द्रियां हमारे उद्धार के भविष्य के बारे में हमें ज्ञान प्रदान करने की योग्यता में सीमित हैं। हाँ, परमेश्वर के वचन को पढने में हम हमारी दृष्टि का प्रयोग करते हैं, परन्तु परमेश्वर के वचन की सच्चाई को समझने के लिए मात्र संवेदी बोध से कहीं अधिक की आवश्यकता पड़ती है- इसमें विश्वास की आवश्यकता होती है, अर्थात् उन बातों में भरोसा जो प्रत्यक्ष संवेदी अनुभव से बाहर की हों।

परन्तु, इन सीमितताओं के बावजूद परमेश्वर ने हमें ज्ञान प्राप्त करने के महत्वपूर्ण साधनों के रूप में हमारी इन्द्रियां दी हैं। फलस्वरूप, हमारी इन्द्रियां विश्वसनीय हैं, और हमें परमेश्वर, सृष्टि और हमारे अपने बारे में सच्ची बातें सिखाती हैं। अब हमें इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि मनुष्यजाति के पाप में पतन ने हमारे संवेदी बोधों को प्रभावित कर दिया है। न केवल बीमारी और अन्य असामान्यताएं हमारी भौतिक योग्यताओं को सीमित कर देती हैं, परन्तु कभी-कभी हम भ्रम का भी सामना करते हैं। कभी-कभी हम सोचते हैं कि जो हम सोचते, सुनते, देखते या महसूस करते हैं वह वास्तव में नहीं है। परन्तु सामान्यतः, हमारी इन्द्रियां विश्वसनीय होती हैं। 1 यूहन्ना 1:1-3 में यूहन्ना के शब्दों को देखें :

> **उस जीवन के वचन के विषय में जो आदि से था, जिसे हम ने सुना, और जिसे अपनी आंखों से देखा, वरन जिसे हम ने ध्यान से देखा; और हाथों से छूआ। यह जीवन प्रगट हुआ, और हम ने उसे देखा, और उस की गवाही देते हैं, और तुम्हें उस अनन्त जीवन का समाचार देते हैं, जो पिता के साथ था, और हम पर प्रगट हुआ। जो कुछ हम ने देखा और सुना है उसका समाचार तुम्हें भी देते हैं, इसलिये कि तुम भी हमारे साथ सहभागी हो। (1 यूहन्ना 1:1-3)**

यूहन्ना ने देखने, सुनने, और स्पर्श करने को विश्वसनीय इन्द्रियों के रूप में बताया जिन्होंने उसे और अन्यों को यीशु के बारे में सच्चा ज्ञान प्रदान किया था। इसी प्रकार, जो यूहन्ना के शब्दों को पढ़ते हैं वे अपनी इन्द्रियों का प्रयोग यूहन्ना के शब्दों को समझने, उसकी गवाही को सुनने एवं पढने में करते हैं, ताकि उन्हें भी सत्य का ज्ञान मिल सके।

इसी प्रकार, भजन 34:8 हमें इन शब्दों से उत्साहित करता है :

> **परखकर देखो कि यहोवा कैसा भला है, क्या ही धन्य है वह पुरुष जो उसकी शरण लेता है! (भजन 34:8)**

जैसे कि दाउद ने यहाँ सिखाया कि यदि हमारे पास खाने के लिए भोजन है तो यह इस बात का प्रमाण है कि परमेश्वर अच्छा है; यह हमें सिखाता है कि वह हमसे प्रेम करता है और हमारी जरूरतों को पूरी करता है। और यद्यपि हम परमेश्वर को भौतिक रूप से देख नहीं सकते, फिर भी उसकी अच्छाई के बारे में हमारी जानकारी को रूपक के रूप में देखना कहा जा सकता है, क्योंकि यह हमें उसके बारे में ज्ञान देती है। अतः परखने या चखने कि हमारी इन्द्री और खाने का हमारा अनुभव दोनों हमें परमेश्वर के बारे में सच्चा ज्ञान प्रदान करते हैं।

हमारी इन्द्रियों के माध्यम से ही हम परमेश्वर के नियमों को समझते हैं जब उन्हें विशेष और सामान्य प्रकाशन के द्वारा प्रकट किया जाता है। हमारी भौतिक इन्द्रियों के माध्यम से हम हमारी परिस्थितियों की बहुत सी वास्तविकताओं, लक्ष्यों और माध्यमों के बारे में सीख सकते हैं। हमारी इन्द्रियों के माध्यम से ही हम अपने बारे में काफी कुछ सीखते हैं। हाँ, हमें सही रूप से अपनी इन्द्रियों का प्रयोग करने में सावधान रहना चाहिए। और हमें हमारी इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान की पुष्टि करने के लिए पवित्रशास्त्र और अन्य क्षमताओं का प्रयोग करने की जरुरत है। परन्तु हमें यह भी पहचानने की जरुरत है कि हमारी इन्द्रियां सामान्यतः विश्वसनीय हैं और परमेश्वर द्वारा दिए गए साधन हैं, और जो ज्ञान हम उनके द्वारा प्राप्त करते हैं, वह मसीही नैतिक शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण है।

संसार के साथ भौतिक व्यवहार को हमारे अनुभव के एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में देखने के बाद, अब हम हमारे मानसिक अनुभवों के बारे में बात करने के लिए तैयार हैं, वे अनुभव जो हमारे मन में पाए जाते हैं।

मानसिक

हमारी इन्द्रियां हमें जानकारी प्रदान करती हैं, परन्तु जब तक वह जानकारी हमारी आन्तरिक वैचारिक प्रक्रियाओं में प्रवेश नहीं करती तब तक हमारे अनुभवों से ज्ञान प्राप्त नहीं होता। अब आरंभ से ही हमें यह मान लेना चाहिए कि सारे इतिहास में इन्द्रियों के बोध एवं मानसिक धारणाओं के बीच के संबंध को कई तरीकों में समझा गया है। परन्तु हमारे उद्देश्यों के लिए, हम बहुत ही सरल रूप में इस संबंध का वर्णन करेंगे।

एक गाय को देखने के अनुभव पर ध्यान दें। जब मैं गाय को देखता हूँ, तो मेरी आँखें एक तस्वीर मेरे मस्तिष्क को भेजती हैं। यह दृष्टि का भौतिक संवेदी अनुभव है। परन्तु यह जानने का अनुभव कि वह जानवर गाय है, वह मानसिक है। मेरी आँखें मेरे दिमाग को नहीं बताती कि वह तस्वीर गाय की है। इसके विपरीत, यह मेरा दिमाग है जो तस्वीर को गाय के रूप में समझता है। जब मेरा दिमाग गाय की तस्वीर के अनुभव को प्राप्त कर लेता है, तभी मेरी दृष्टि ज्ञान को प्रदान करती है।

इसी प्रकार से, हमारे सारे मानसिक अनुभव ज्ञान को प्राप्त करने के योग्य हैं। आत्म-चिंतन, मनन, आत्म-विश्लेषण, भावनाएं, स्मृतियाँ, कल्पनाएँ, भविष्य की योजनाएँ, समस्याओं का सामना करना, परमेश्वर के बारे में जानकारी, पाप का बोध- ये सब आन्तरिक क्रियाएं हैं जिनका हम अनुभव करते हैं।

अब, हमारे भौतिक अनुभव के समान, हमारा मानसिक अनुभव भी पाप से प्रभावित होता है। कभी-कभी हम हमारे विचारों में गलतियाँ करते हैं या मानते हैं कि हमने ऐसी बातों का अनुभव किया है जो वास्तव में हुई ही नहीं। अतः हमें हमारे अनुभवों की पुष्टि पवित्रशास्त्र और हमारी अन्य क्षमताओं के साथ करनी चाहिए। परन्तु हमें यह भी पहचानना जरुरी है कि पवित्र आत्मा हमारे मानसिक अनुभवों का प्रयोग हमें सच्चा ज्ञान सिखाने के लिए करता है।

जब हम हमारे मानसिक अनुभवों के बारे में इस प्रकार से सोचते हैं, तो यह देखना सरल हो जाता है कि ज्ञान प्राप्त करने की सारी प्रक्रिया की जांच हमारे मानसिक अनुभव के दृष्टिकोण से की जा सकती है। चाहे

हमारा ज्ञान पुस्तकों को पढने से या घटनाओं को देखने से आए, अंत में यह हमारे मन रहता है। और इसी कारण, मानसिक अनुभव ज्ञान को प्राप्त करने और लागू करने के लिए महत्वपूर्ण है।

अनुभव की इस समझ को मन में रखते हुए, हम उस दूसरी अस्तित्व-संबंधी क्षमता की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं जिसका इस्तेमाल हम ज्ञान, अर्थात् कल्पना को प्राप्त करने के लिए करते हैं। कल्पना को कभी-कभी ज्ञान प्राप्त करने के असंवैधानिक तरीके के रूप में समझा जाता है, जैसे कि इसमें झूठ या धोखे का होना तो आवश्यक है। परन्तु जैसा कि हम देखेंगे, बाइबल में कल्पना के कई सकारात्मक प्रयोग पाए जाते हैं।

कल्पना

इस अध्याय में, हम कल्पना शब्द का इस्तेमाल हमारे अनुभव से परे की बातों की मानसिक तस्वीरों को बनाने की हमारी योग्यताओं के लिए करेंगे। पहली नज़र में, कल्पना को नैतिक ज्ञान को प्राप्त करने के रूप में सोचना विचित्र प्रतीत हो सकता है। परन्तु जैसा कि हम देखेंगे, हमारी कल्पनीय योग्यताएं परमेश्वर, संसार और हमारे स्वयं के बारे में सीखने और सोचने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

हम तीन प्रकार से कल्पना की धारणा की जांच करेंगे। पहला, हम कल्पना को रचनात्मकता के एक प्रकार के रूप में देखेंगे। दूसरा, हम उन तरीकों को देखेंगे जिनमें कल्पना हमें उन विषयों के बारे में सोचने के योग्य बनाती है जो किसी दूसरे समय में होते हैं। तीसरा, हम यह देखेंगे कि किस प्रकार हमारी कल्पनीय योग्यताएं हमें ऐसी बातों के बारे में सोचने की अनुमति देती हैं जो भौतिक दूरी में हमसे दूर होती हैं। हम इस विचार के साथ आरंभ करेंगे कि कल्पना रचनात्मकता का एक प्रकार है।

रचनात्मकता

रचनात्मकता के रूप में कल्पना के बारे में सोचने का एक विशिष्ट तरीका उन चरणों के बारे में सोचना है जो कलाकार तस्वीरों को बनाते समय लेते हैं। वे तस्वीरों की परिकल्पना करने के द्वारा प्रायः आरंभ करते हैं, अर्थात् वे तस्वीरों के उस मानसिक चित्र को बनाते हैं जैसी वे तस्वीरें अंत में दिखाई देंगी। जब वे बनाना आरंभ करते हैं, तो वे बनाने से पहले ही हर मोड़ के परिणामों की कल्पना करते हैं। यदि वह मोड़ उससे मिलता है जो उनके मन में है, तो वे प्रायः खुश हो जाते हैं। परन्तु यदि यह उनकी मन की तस्वीर से मिलान नहीं खाता तो वे शायद उसमें बदलाव कर देते हैं जो उन्होंने बनाया है। कल्पना करने और चित्र बनाने की प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कार्य समाप्त नहीं हो जाता।

इसी प्रकार से, हम जो कुछ भी बनाते या रचते हैं उस सब में कल्पना शामिल होती है। हम रचनात्मकता के सरल कार्यों के लिए प्रतिदिन हमारी कल्पना का प्रयोग करते हैं, जैसे कि यह निर्णय करना कि हम क्या खाना बनायेंगे, और यह निर्णय करना कि बातचीत में क्या कहना है। हम हमारी कल्पनाओं का प्रयोग कई अन्य रचनात्मक रूपों भी करते हैं। वैज्ञानिक अपनी कल्पनाओं का प्रयोग सिद्धांतों की रचना करने, और अपने सिद्धांतों की जांच करने के लिए करते हैं। शोधकर्ता अपनी कल्पनाओं का प्रयोग नई तकनीकों और मशीनों की रचना करने में करते हैं। वास्तुकार अपनी कल्पनाओं का प्रयोग भवनों और पुलों के नक़्शे बनाने में करते हैं। और शिक्षक एवं प्रचारक अपनी कल्पनाओं का प्रयोग लेखों और संदेशों को लिखने में करते हैं।

2 शमूएल 12:1-7 में इस घटना के वर्णन को सुनें

> **[नातान] कहने ने लगा, एक नगर में दो मनुष्य रहते थे, जिन में से एक धनी और एक निर्धन था... निर्धन के पास भेड़ की एक छोटी बच्ची को छोड़ और कुछ भी न था...**

> और वह उसके यहां उसके बालबच्चों के साथ ही बढ़ी थी; वह उसके टुकड़े में से खाती, और उसके कटोरे में से पीती, और उसकी गोद मे सोती थी, और वह उसकी बेटी के समान थी... और धनी ने... भेड़ की बच्ची ले कर उस जन के लिये... भोजन बनवाया। तब दाऊद का कोप उस मनुष्य पर बहुत भड़का; और उसने नातान से कहा, यहोवा के जीवन की शपथ, जिस मनुष्य ने ऐसा काम किया वह प्राण दण्ड के योग्य है... तब नातान ने दाऊद से कहा, तू ही वह मनुष्य है। (2 शमूएल 12:1-7)

पवित्र आत्मा की प्रेरणा में नातान ने एक कल्पनात्मक नैतिक स्थिति, एक कल्पनात्मक कानूनी विषय की रचना की। और उसने दाऊद को अपनी कल्पनात्मक स्थिति से एक नैतिक निष्कर्ष निकालने के लिए कहा। नातान के विरोध की सफलता उसकी एवं दाऊद की रचनात्मक रूप से कल्पना करने की योग्यता पर निर्भर थी।

जैसे कि यह बाइबल-आधारित उदाहरण दर्शाता है, कल्पना हमें नैतिक प्रारूपों और रूपकों को बनाने और उन्हें पहचानने के योग्य बनाती है। उदाहरण के तौर पर, जब हम पवित्रशास्त्र में देखते हैं तो हम उन बातों के कई विशिष्ट उदाहरण देख सकते हैं जिन्हें परमेश्वर ने आशीषित किया और श्राप दिया, और हम कई ऐसे सामान्य सिद्धांतों को भी पाते हैं जो स्पष्ट करते हैं कि परमेश्वर कैसे निर्धारित करता है कि किसे आशीष दे और किसे श्राप दे। और यह समझना कि किस प्रकार ये सामान्य सिद्धांत विशिष्ट उदाहरणों से संबंध रखते हैं, यह कुछ हद तक रचनात्मक कल्पना का विषय है। हम सिद्धांतों और उदाहरणों के बीच संबंधों की रचना करते हैं, और हम प्रति-उदाहरणों की कल्पना करने के द्वारा इन संबंधों की जांच करते हैं। तब हम हमारे जीवनों में उन सामान सिद्धांतों को लागू करने के स्थिर तरीकों की कल्पना करते हैं।

निस्संदेह, हमें एक बार पुनः याद रखना आवश्यक है कि पाप की भ्रष्टता हमसे हर प्रकार की गलत बातों की कल्पना करवा सकती है, इसलिए हमें इस बात के प्रति आश्वस्त रहने के लिए अन्य क्षमताओं का प्रयोग करना चाहिए कि हमारी कल्पनाएँ परमेश्वर के वचन के अनुरूप होनी चाहिए। फिर भी, हम हमारी कल्पनाओं में आत्मविश्वास को रख सकते हैं जब हम सावधानी से और सही रूप से इसका प्रयोग करते हैं, क्योंकि पवित्र आत्मा ने नैतिक ज्ञान के मूल्यांकन के विश्वसनीय साधन के रूप में हमें यह क्षमता प्रदान की है।

परन्तु, रचनात्मकता के लिए कल्पना के इस्तेमाल के अतिरिक्त, हम इसका प्रयोग उन बातों को सोचने के लिए भी कर सकते हैं जो समय के आधार पर हम से दूर हैं- अर्थात् वे बातें जो उस समय नहीं पाई जातीं जब हम उनके बारे में बात कर रहे हैं।

समय

यीशु के बारे में सोचें। वह अब अपने 12 चेलों को सिखाता हुआ धरती पर नहीं है। वह अब क्रूस पर मर नहीं रहा है, न मृतकों से जीवित हो रहा है, और न ही स्वर्ग में चढ़ रहा है। अतः यीशु की सेवकाई को समझने और उसे हमारे नैतिक निर्णयों में लागू करने के लिए हमें अतीत की कल्पना करने की हमारी योग्यता का इस्तेमाल करना जरूरी है।

उदहारण के लिए, बाइबल हमसे मांग करती है कि हम अच्छे लक्ष्यों का अनुसरण करें, विशेषकर उसके राज्य की विजय के माध्यम से परमेश्वर की महिमा करने के लक्ष्य का। परन्तु यह लक्ष्य तो भविष्य का है। इसका अनुसरण करने के लिए हमें इसकी कल्पना करनी होगी। और हमें इस लक्ष्य तक पहुँचने के सर्वोत्तम साधनों को ढूँढने के लिए भी अपनी कल्पनाओं का इस्तेमाल करना होगा। सारांश में, भविष्य की कल्पना करने की हमारी योग्यता के बिना, हम हमारे जीवनों में परमेश्वर के वचन को लागू नहीं कर पाएंगे।

कल्पना को रचनात्मकता और समय के आधार पर देखने के बाद, हमें इस विषय की ओर मुड़ना चाहिए कि कल्पना किस प्रकार हमें उन बातों के बारे में सोचने के लिए सहायता करती है जो दूरी के आधार पर हमसे दूर हैं। जिस प्रकार वस्तुएं या बातें समय के आधार पर हमसे दूर हो सकती हैं, वैसे ही वे भौतिक दूरी से भी हमसे दूर हो सकती हैं।

दूरी

उदाहरण के लिए, हम में से बहुत ही कम लोग माल्टा द्वीप गए होंगे जहाँ रोम की ओर यात्रा करते हुए प्रेरित पौलुस का जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। परन्तु यह बात कि हमने कभी उस द्वीप को स्वयं देखा नहीं, हमें उसकी कल्पना करने से नहीं रोक सकती। वास्तव में, जब हम प्रेरितों के काम नामक पुस्तक में माल्टा द्वीप में पौलुस के बिताए समय के बाइबल के वर्णन को पढ़ते है तो हम उसकी कल्पना किये बिना नहीं रह सकते।

देखिये, जब लोग और वस्तुएं हमसे इतनी दूर होती हैं कि वे हमारी इन्द्रियों के प्रभाव से परे हों, तो वे वर्तमान में हमारे अनुभव का हिस्सा नहीं होतीं। और क्योंकि वे वर्तमान में हमारे अनुभव का हिस्सा नहीं है, इसलिए हमें उनके बारे में सोचने के लिए हमारी कल्पनाओं का इस्तेमाल करना पड़ता है। निस्संदेह, इन दूर की वस्तुओं के बारे में जो जानकारी हमें मिलती है वह त्रुटि-अधीन होती है, अर्थात् उनमें त्रुटियां हो सकती हैं, और वैसे ही उनके बारे में हमारे विचार भी हो सकते हैं। अतः, हमें मजबूती से पवित्र आत्मा पर निर्भर रहना जरूरी है, ताकि वह परमेश्वर के वचन के अनुसार हमारी कल्पनाओं की जाँच करने में और हमारी योग्यताओं एवं सामर्थ्यों से इसका सांमजस्य करवाने में हमारी सहायता करे। जब इसका सही रूप में इस्तेमाल किया जाता है, तो हमारी कल्पना हमसे दूर की बातों के बारे में सोचने के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है।

उस समय के बारे में सोचें जब प्रेरित पौलुस एक बार बंदीगृह में था। फिलिप्पियों 2:25 और 4:18 के अनुसार, जब फिलिप्पियों की कलीसिया ने सुना कि पौलुस बंदीगृह में है और जरुरत में है, तो उन्होंने उसकी सहायता के लिए आर्थिक मदद भेजी और उसकी सेवा के लिए एक सेवक को भेजा। यह एक अच्छा नैतिक चुनाव था। इसने वास्तविकताओं को समझा, भक्तिपूर्ण लक्ष्य स्थापित किया, और फिर उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए माध्यमों को चुना।

परन्तु ध्यान दें कि किस प्रकार पौलुस और फिलिप्पियों के बीच की दूरी को पाटने के लिए यह प्रक्रिया कल्पना पर आधारित थी। पौलुस फिलिप्पियों के अनुभव के समक्ष उपस्थित नहीं था, इसलिए उन्होंने पौलुस की परिस्थिति की वास्तविकताओं को समझने के लिए अपनी कल्पना का इस्तेमाल किया। फिर उन्होंने दूर के बंदीगृह में पौलुस की परिस्थितियों को बदलने के लक्ष्य को स्थापित करने के लिए अपनी कल्पना का इस्तेमाल किया। अंत में, उन्होंने उन माध्यमों की कल्पना की जो उनके लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उनके और पौलुस के बीच की दूरी को पाटने में उनकी सहायता करें। इस प्रक्रिया के प्रत्येक कदम में, कल्पना ने फिलिप्पियों को उन बातों के बारे में सोचने के योग्य बनाया जो उनके भौतिक अनुभव से परे उनसे दूर थीं।

अब तक, यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया अधिकांशतः अनुभव और कल्पना पर निर्भर करती है। चाहे हम परमेश्वर के वचन, हमारी परिस्थिति या फिर अपने बारे में नैतिक पहलुओं की जांच कर रहे हों, हम सामान्यतः इन अस्तित्व-संबंधी क्षमताओं से हमारे ज्ञान को प्राप्त करते हैं।

हमने यहाँ पर अच्छी बात को चुनने की प्रक्रिया में एक चरण रूप में ज्ञान प्राप्त करने के बारे में बात कर ली है, इसलिए अब हमें ज्ञान की जांच या उसका मूल्यांकन करने की ओर मुड़ना चाहिए, अर्थात् ऐसा चरण जिसमें हम उस जानकारी का मूल्यांकन करते हैं जो हमने प्राप्त की है।

ज्ञान का मूल्यांकन

हम उन कुछ रूपों के बारे में बात करेंगे जिनमें तीन विशेष अतित्व-संबंधी क्षमताएं ज्ञान के मूल्यांकन के हमारे कार्य में हमारी सहयता करती हैं। पहला, हम तर्क-वितर्क के बारे में बात करेंगे, जो कि हमारी सबसे तार्किक क्षमता है। दूसरा, हम हमारे विवेक को संबोधित करेंगे, जो कि अच्छे और बुरे को पहचानने की हमारी योग्यता है। और तीसरा, हम सही और गलत के आन्तरिक सूचकों के रूप में हमारे मनोभावों पर ध्यान देंगे। आइए, तर्क-वितर्क के साथ आरंभ करें, अर्थात् वह क्षमता जिसके द्वारा हम हमारे विचारों को तार्किक रूप में व्यवस्थित करते हैं।

तर्क-वितर्क

दुर्भाग्यवश, जब मसीही नैतिक शिक्षा में तर्क-वितर्क की भूमिका के बारे में सोचते हैं तो प्रायः पराकाष्ठा तक पहुँच जाते हैं। एक ओर, कुछ धर्मविज्ञानी हमारी चार अन्य अस्तित्व-संबंधी क्षमताओं से अधिक तर्क पर अधिक ध्यान देते हैं। ये धर्मविज्ञानी कभी-कभी "बुद्धि की प्रमुखता" के बारे में बात करते हैं, जैसे कि अन्य सभी योग्यताओं और सामर्थ्यों से बढकर तर्क-वितर्क पर भरोसा किया जाना चाहिए। परन्तु हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि तर्क-वितर्क के सही इस्तेमाल के लिए हमें इसका इस्तेमाल अन्य क्षमताओं के सांमजस्य में करना चाहिए। दूसरी ओर, कुछ परम्पराएँ इसकी विपरीत दिशा में जाती हैं, और कभी-कभी तर्क-वितर्क को शत्रु के रूप में देखती हैं, जैसे कि मानवीय बुद्धि का इस्तेमाल करना पवित्र आत्मा की व्यक्तिगत अगुवाई को नजरअंदाज करना हो। परन्तु सत्य यह है कि हमारी बुद्धि परमेश्वर से आती है, और पवित्र आत्मा इसका सही इस्तेमाल करने में हमारी सहायता करता है। अतः, हमारी निर्णय लेने की प्रक्रिया में इसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका है।

हमारे उद्देश्यों के लिए, तर्क-वितर्क को तार्किक अनुमानों और तार्किक नियमितता को जांचने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। मसीही सन्दर्भ में, सही तर्क-वितर्क स्पष्ट और व्यवस्थित रूपों में सोचने एवं ऐसे निर्णय लेने की योग्यता है जो विचारों के बाइबल-आधारित प्रारूपों के अनुसार हो।

मसीही नैतिक शिक्षा के अध्ययन के अनेक क्षेत्रों में तर्क-वितर्क अपनी भूमिका अदा करता है। परन्तु हमारे अध्याय में इस बिंदु पर हमारी रुचि इस बात में अधिक है कि यह वास्तविकताओं को समझने में और परमेश्वर के वचन में प्रकट नियमों के साथ इन वास्तविकताओं की तुलना करने के द्वारा हमारी परिस्थिति को समझने में हमारी सहायता कैसे करता है।

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, आधारभूत स्तर पर हमारे इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त किया गया ज्ञान भी विवेकपूर्ण तर्क-वितर्क की मांग करता है। जब भी इन्द्रिय बातें मानसिक रूप से क्रियान्वित की जाती हैं, तो हम कुछ हद तक हमारे तर्क-वितर्क को क्रियान्वित करते हैं।

एक बार पुनः सोचें कि किस प्रकार हमारी आँख गाय की तस्वीर हमारे मस्तिष्क को भेजती है। हमारा मस्तिष्क तस्वीर को कैद करता है, परन्तु यह हमारा तर्क-वितर्क ही है जो तस्वीर को गाय के रूप में पहचानता है। हम तस्वीर की दृष्टिगोचर विशेषताओं को जांचते हैं, हमारे पहले के ज्ञान से उस तस्वीर की तुलना करते हैं, और यह निर्धारित करते हैं कि वह तस्वीर गाय की है। ज्ञान के इस आधारभूत स्तर में तर्क-वितर्क शामिल होता है।

और एक जटिल स्तर पर, तर्क-वितर्क भिन्न वास्तविकताओं की और अधिक विस्तृत रूप में एक-दूसरे के साथ तुलना करने की अनुमति देता है ताकि हम उनके तार्किक संबंधों को निर्धारित कर सकें।

उदाहरण के तौर पर, आइए दो वास्तविकताओं के बारे में तर्क-वितर्क करने के एक सरल उदाहरण के बारे में सोचें। एक ओर, हमारे पास एक कथन है, "डेविड बीमार है।" और दूसरी ओर, हमारे पास एक यह कथन है, "परमेश्वर बीमार को चंगा कर सकता है।" पहला कथन डेविड के ख़राब स्वास्थ्य की वास्तविकता को दर्शाता है, और दूसरा कथन परमेश्वर की योग्यता की वास्तविकता को दर्शाता है।

तर्क-वितर्क हमें बताता है कि डेविड की बीमारी बिमारियों की एक सामान्य श्रेणी का विशेष उदाहरण है। शायद उसे जुखाम लगा है, या ठण्ड लगी है या उसे निमोनिया हुआ है। चाहे जो भी हो, यह बिमारियों की उस विशाल श्रेणी में शामिल है जिसे परमेश्वर चंगा कर सकता है। यह हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने में प्रेरित करता है जो समझा तो गया है परन्तु आरंभिक वास्तविकता में दर्शाया नहीं गया है : परमेश्वर डेविड को चंगा कर सकता है।

जब हमारे सामने बाइबल पर आधारित निर्णय लेने की चुनौती होती है तो हमें हमारी परिस्थितियों की वास्तविकताओं के प्रति वैसे ही तर्क-वितर्क को लागू करना चाहिए, और यह निर्धारित करना चाहिए कि वे एक-दूसरे से कैसे संबंधित हैं।

तर्क-वितर्क वास्तविकता के कथनों को कर्त्तव्य के कथनों से जोड़ने में भी सहायता करता है। इस प्रक्रिया में हम हमारी परिस्थिति की वास्तविकताओं की तुलना परमेश्वर की विधियों की मांगों से करते हैं। उन कथनों पर ध्यान दें, "डेविड बीमार है" और "हमें बीमार लिए प्रार्थना करनी चाहिए।" "डेविड बीमार है" एक वास्तविकता का कथन तो है, परन्तु "हमें बीमार के लिए प्रार्थना करनी चाहिए" यह एक कर्त्तव्य का कथन है। यह हमें बताता है कि परमेश्वर हमसे क्या चाहता है। जब हम इन कथनों का मूल्यांकन करने के लिए नैतिक तर्क-वितर्क या विवेक का इस्तेमाल करते हैं तो हम एक विशेष या सटीक नैतिक निष्कर्ष निकाल सकते हैं : हमें डेविड के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

निस्संदेह, ऐसे कई अन्य ऐसे तरीके हैं जिन पर हमें नैतिक शिक्षा में तर्क-वितर्क करना चाहिए। हम तब तर्क-वितर्क का इस्तेमाल करते हैं जब निम्न से बड़े की ओर तर्क देते हैं, जैसा कि यीशु ने किया जब उसने यह सिखाया कि क्योंकि परमेश्वर पक्षियों को भोजन देता है, जिनकी कीमत बहुत कम होती है, इसलिए वह अपने लोगों को भी भोजन देगा जिनकी कीमत बहुत अधिक है। हम तब भी तर्क-वितर्क का इस्तेमाल करते हैं, जब हम उन घटनाओं के बारे में बात करते है जो किसी खास परिस्थिति में घटित हुई हों, जैसे कि नूह के दिनों में जब परमेश्वर पृथ्वी पर जलप्रलय लाया था क्योंकि मानवजाति के पापमय कार्य उन परिस्थितियों के समरूप दिखे जो उसके विनाश के लिए आवश्यक थीं। इस सूची में और भी कई घटनाएँ शामिल की जा सकती हैं।

दुर्भाग्यवश, मसीही कभी-कभी मानते हैं कि बाइबल सिखाती है कि नैतिक शिक्षा में तर्क-वितर्क का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। वे सोचते हैं कि जब हम परमेश्वर की आज्ञा मानते हैं तो हमें हमारी तार्किक क्षमताओं को नकार देना चाहिए। परन्तु सत्य से बढ़कर कुछ नहीं हो सकता। पवित्रशास्त्र हर समय तर्क-वितर्क का इस्तेमाल करता है, और वह हमसे सदैव ऐसा ही करने को कहता है। और क्योंकि बाइबल त्रुटिरहित है, इसलिए हमारे अपने नैतिक तर्क-वितर्क के लिए इसका तर्क एक सिद्ध नमूना है।

निस्संदेह, हमें सदैव यह याद रखना है कि पाप का भ्रष्ट करने वाला प्रभाव हमारे तर्क-वितर्क करने की योग्यता तक भी पहुँच चुका है। फलस्वरूप, पतित मानवीय तर्क-वितर्क कभी उतना सिद्ध नहीं हो सकता जितना पवित्रशास्त्र में पाया जाने वाला तर्क-वितर्क होता है। अतः आत्म-विश्वास प्राप्त करने के लिए हमें हमारे निष्कर्षों की पुष्टि हमारी क्षमताओं, अन्य लोगों, और ख़ास कर परमेश्वर के वचन के साथ करनी चाहिए। इससे बढ़कर, जैसा कि हमने इस खंड के आरंभ में कहा था, हमें इसे पूरा करने के लिए ऐसे रूपों में पवित्र आत्मा की शक्ति और हमारे भीतर वास करने वाली उपस्थिति पर निर्भर होना चाहिए जो परमेश्वर को प्रसन्न

करते हैं। जब हम इन रूपों में तर्क-वितर्क का इस्तेमाल करते हैं, तो यह उस ज्ञान का मूल्यांकन करने में बहुत सहायक साधन है जो हमने प्राप्त किया है।

तर्क-वितर्क की इस समझ को ध्यान में रखते हुए, हम उन रूपों पर चर्चा करने के लिए तैयार हैं जिनमे हमारा विवेक हमारे नैतिक ज्ञान को जांचने के लिए हमें योग्य बनाता है। मानवीय विवेक किस प्रकार हमारे द्वारा प्राप्त जानकारी का मूल्यांकन करने में हमारी सहायता करता है?

विवेक

इस अध्याय में हमारे उद्देश्यों के लिए, हम हमारे विवेक को परमेश्वर द्वारा दी गयी अच्छे और बुरे को पहचानने की योग्यता के रूप में परिभाषित करेंगे। यह बोध का ही भाव है कि हमारे विचार, शब्द और कार्य परमेश्वर को या तो पसंद आते हैं या उसे दुःख पहुंचाते हैं। सुनिए किस प्रकार 2 कुरिन्थियों 1:12 अपने विवेक पर पौलुस की निर्भरता को दिखाता है :

> **हम अपने विवेक की इस गवाही पर घमण्ड करते हैं, कि जगत में और विशेष करके तुम्हारे बीच हमारा चरित्र परमेश्वर के योग्य पवित्रता और सच्चाई सहित था। (2 कुरिन्थियों 1:12)**

पौलुस और तीमुथियुस इस बात से आश्वस्त थे कि उन्होंने इस प्रकार से व्यवहार किया था जिसे परमेश्वर ने प्रमाणित किया था। उनके विवेक ने उनके कार्यों को प्रमाणित किया था। इस विषय में, उनके विवेक ने उनको सच्ची अभिपुष्टि दी कि उनका व्यवहार परमेश्वर को प्रसन्न करने वाला था।

अन्य विषयों में, जब हम पाप करते हैं, तो हमारा विवेक सही रूप से दोषी के रूप में हमारी निंदा कर सकता है और पश्चाताप करने के लिए हमें उत्साहित करता है। उदाहरण के तौर पर, जब राजा दाऊद ने पापमय रूप में अपने योद्धाओं की गिनती की, तो उसके विवेक ने उसके कार्यों की निंदा की और उसे पश्चाताप करने के लिए प्रेरित किया। 2 शमूएल 24:10 में इसके ब्यौरे को पढ़ें :

> **प्रजा की गणना करने के बाद दाऊद का मन व्याकुल हुआ। और दाऊद ने यहोवा से कहा, यह काम जो मैं ने किया वह महापाप है। तो अब, हे यहोवा, अपने दास का अधर्म दूर कर; क्योंकि मुझ से बड़ी मूर्खता हुई है। (2 शमूएल 24:10)**

यहाँ जो शब्द विवेक के रूप में अनूदित किया गया है वह है “मन”। परन्तु इस विषय में, शब्द “मन” विवेक की धारणा को दर्शाता है, अच्छे और बुरे के बीच अंतर करने की दाऊद की योग्यता।

इस भाव में, विवेक हमारे द्वारा प्राप्त किये गए ज्ञान को जांचने, और परमेश्वर के वचन के स्तर के समक्ष इसे परखने में हमें योग्य बनाता है। यह हमें प्रमाणित करता है जब हम विश्वास करते हैं कि हम परमेश्वर के वचन के अनुसार कार्य कर रहे हैं, और यह हमारी निंदा करता है जब हम जानते हैं कि हम परमेश्वर के वचन का उल्लंघन कर रहे हैं।

अन्य सारी अस्तित्व-संबंधी योग्यताओं और सामर्थ्यों के समान, हमारा विवेक भी पाप के द्वारा भ्रष्ट हो चुका है। इसलिए यह समय-समय पर गलतियाँ करता है। यह उन बातों को प्रमाणित करने के द्वारा जो वास्तव में पापमय हैं या उन बातों की निंदा करने के द्वारा जो वास्तव में अच्छी हैं, गलतियाँ करता है। जो भी विषय हो, परिणाम यह रहता है कि हम उस बात को समझ नहीं पाते कि परमेश्वर हमसे क्या करवाना चाहता है। उदाहरण के तौर पर, 1 कुरिन्थियों 8:8-11 में पौलुस की शिक्षा को सुनें :

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

> भोजन हमें परमेश्वर के निकट नहीं पहुंचाता, यदि हम न खांए, तो हमारी कुछ हानि नहीं, और यदि खाएं, तो कुछ लाभ नहीं। परन्तु चौकस रहो, ऐसा न हो, कि तुम्हारी यह स्वतंत्रता कहीं निर्बलों के लिये ठोकर का कारण हो जाए। क्योंकि यदि कोई तुझे मूरत के मन्दिर में भोजन करते देखे, और वह निर्बल जन हो, तो क्या उसके विवेक में मूरत के साम्हने बलि की हुई वस्तु के खाने का हियाव न हो जाएगा। इस रीति से तेरे ज्ञान के कारण वह निर्बल भाई... नाश हो जाएगा। **(1 कुरिन्थियों 8:8-11)**

पौलुस ने सिखाया कि मजबूत और अच्छे विवेक वाले विश्वासियों के लिए मूर्तियों के सामने चढ़ाया गया भोजन खाना स्वीकारयोग्य है। परन्तु यदि उनके विवेक कमजोर हैं और वे गलत रूप से सोचते हैं कि मूर्ती के सामने चढ़ाया हुआ भोजन खाना गलत है, तो उसे खाना उनके लिए पापमय हो जाता है। और यदि इसकी विपरीत बात भी सही है। परमेश्वर द्वारा निषेध कार्यों को करना पापमय है फिर चाहे हमारे विवेक कहें कि ये कार्य सही हैं। 1 कुरिन्थियों 4:4 में पौलुस के शब्दों पर ध्यान दें :

> क्योंकि मेरा मन मुझे किसी बात में दोषी नहीं ठहराता, परन्तु इस से मैं निर्दोष नहीं ठहरता, क्योंकि मेरा परखने वाला प्रभु है। **(1 कुरिन्थियों 4:4)**

पौलुस का विवेक साफ़ था क्योंकि उसे पता था कि उसने एक सही कार्य किया था। परन्तु वह इस बात को भी जनता था कि साफ़ या अच्छे विवेक को रखना ही पर्याप्त नहीं था, क्योंकि हमारे विवेक गलतियाँ कर सकते हैं।

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पाप के भ्रष्ट करने के प्रभाव का समाधान पवित्र आत्मा की शक्ति पर निर्भर रहना है जो हमारे भीतर कार्य करता है जब हम हमारे विवेक को परमेश्वर के वचन के समरूप बनाने का प्रयास करते हैं। जब वह हमारी अस्तित्व-संबंधी क्षमताओं में सांमजस्य लाने में हमारी सहायता करता है, तो हम उसे सुधार सकते हैं जब हमारा विवेक गलती करता है, और इसकी पुष्टि कर सकते हैं जब यह सही निर्णय लेता है।

हमने यहाँ तर्क-वितर्क और विवेक के बारे में बात की है, अब हम उन तरीकों पर ध्यान देने के लिए तैयार हैं जिनमें हम ज्ञान को परखने में हमारे मनोभावों का इस्तेमाल करते हैं। दुर्भाग्यवश, अनेक मसीही मानते हैं कि मनोभावों का बाइबल पर आधारित निर्णय लेने से कोई संबंध नहीं होना चाहिए, परन्तु जैसा कि हम देखेंगे, पवित्रशास्त्र बल देता है कि मनोभाव बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

मनोभाव

मनोभाव आंतरिक भावनाएं हैं; वे हमारी नैतिक संवेदनशीलता के भावात्मक पहलू हैं। बाइबल मनोभावों के बारे में अनमने भाव से या समूह के रूप में बात नहीं करती है। परन्तु यह अलग-अलग मनोभावों के बारे में काफी कुछ कहती है, जैसे प्रेम, घृणा, क्रोध, डर, आनंद, दुःख, चिंता, संतोष इत्यादि। अतः, ज्ञान को परखने हेतु मनोभावों को इस्तेमाल करने के हमारे तरीकों को देखने के लिए हम देखेंगे कि किस प्रकार अनेक विशेष मनोभाव हमारे चारों ओर के संसार को समझने में हमारी सहायता कर सकते हैं।

मनोभाव परमेश्वर द्वारा प्रदान की गयीं मानवीय योग्यताएं हैं जो कई भिन्न तरीकों में हमारे ज्ञान को परखने में हमें योग्य बनाती हैं। हमारे पास प्रायः विवेकपूर्ण प्रतिक्रिया से पहले ही परिस्थितियों के भावनात्मक प्रत्युत्तर होते हैं। इन विषयों में, हमारे मनोभाव वास्तविकताओं के प्रति हमारी आरंभिक जानकारी को प्रदान करते हैं। वे हमारी परिस्थितियों के तात्कालिक मूल्यांकन होते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि मैं सड़क पार कर

रहा हूँ, और अपने पीछे से कार के तीव्र हॉर्न को सुनूँ, तो मेरा पहला प्रत्युत्तर शायद भावनात्मक होगा, जैसे कि डर या आश्चर्य। और विवेकपूर्ण मनन के बाद ही मैं इसे स्पष्ट कर पाऊंगा कि मैं डर गया था क्योंकि मुझे लगा मुझे खतरा हो सकता है।

ऐसे विषयों में, यह कहना संभव है कि मनोभाव तर्क-वितर्क के कुछ अचेतन रूप पर निर्भर होते हैं। मैं जानता हूँ कि कार के हॉर्न प्रायः मुझे खतरे के प्रति सचेत करते हैं। अतः जब मैं किसी हॉर्न को सुनता हूँ, तो मैं डर के मनोभाव के साथ स्वतः ही प्रतिक्रिया कर सकता हूँ। परन्तु ऐसे आवेग में किसी वैचारिक, विवेकीय प्रक्रिया को पहचानना कठिन है। सारी परिस्थितियों में मेरे लिए एक सक्रिय, विवेकपूर्ण तर्क-वितर्क में लगना बहुत शीघ्र होता है।

इसकी अपेक्षा, ऐसा लगता है कि मेरा मनोभाव अनुभव के प्रति मेरी पहली प्रतिक्रिया है, और कि घटना के प्रति मेरी वैचारिक प्रतिक्रिया बाद में आती है। और यही बात कई अन्य नैतिक परिस्थितियों में भी लागू होती है। हमारे आरंभिक मनोभाव प्रायः वास्तविकताओं के प्रति हमारी आरंभिक व्याख्याएँ होते हैं।

दानिय्येल 10:8-17 में स्वर्गदूत के साथ दानिय्येल की भेंट के ब्यौरे को सुनें :

> **तब मैं अकेला रहकर यह अद्‌भुत दर्शन देखता रहा, इस से मेरा बल जाता रहा; मैं भयातुर हो गया, और मुझ में कुछ भी बल न रहा... और जो मेरे साम्हने खड़ा था, उस से मैं ने कहा, हे मेरे प्रभु, दर्शन की बातों के कारण मुझ को पीड़ा सी उठी, और मुझ में कुछ भी बल नहीं रहा। सो प्रभु का दास, अपने प्रभु के साथ क्योंकर बातें कर सके? क्योंकि मेरी देह में ने तो कुछ बल रहा, और न कुछ सांस ही रह गई। (दानिय्येल 10:8-17)**

इस स्वर्गीय प्राणी को देखने के सदमें, भय और वेदना ने दानिय्येल को डर से स्तम्भित कर दिया। दर्शन के बारे में विवेकपूर्ण रूप से सोचने से पहले उसने अपने मनोभावों को बहुत अधिक रूप से महसूस किया। और उसके शक्तिशाली भावनात्मक अनुभव ने दर्शन के प्रति उसके प्रत्युत्तर को प्रभावित किया, और परमेश्वर की ओर से दिए गए स्वर्गदूत के सन्देश के प्रति समर्पण करने के लिए उत्साहित किया।

या एक बार और सोचें कि 2 शमूएल अध्याय 12 में राजा दाऊद ने नातान भविष्यवक्ता को किस प्रकार प्रत्युत्तर दिया। दाऊद ने बेतशेबा के साथ व्यभिचार किया, और फिर अपने व्यभिचार को छिपाने के लिए उसके पति उरिय्याह को मरवा डाला। परन्तु उसने कभी अपने पाप पर दुःख और पछतावा महसूस नहीं किया, और उसने कभी पश्चाताप भी नहीं किया। उसमें इन मनोभावों की कमी ने अपने पापों के बारे में सही रूप से विचार करने से उसे रोका, और इसकी गंभीरता के प्रति अँधा कर दिया और इस कारण उसे पश्चाताप करने से रोका।

दाऊद के हृदय की कठोरता के प्रत्युत्तर में परमेश्वर ने नातान को दाऊद से एक धनी व्यक्ति के बारे में एक दृष्टान्त कहने के लिए भेजा जिसने एक गरीब व्यक्ति की पालतू भेड़ को चुरा कर अपने मेहमानों को भोजन में परोस दिया था। दाऊद स्वयं एक चरवाहा रहा था, और इस कहानी ने उसके मनोभावों को जागृत कर दिया। उसके मनोभावों ने उस परिस्थिति में हो रहे अन्याय को देखने के योग्य बनाया, और वह धनी व्यक्ति की निर्दयता से क्रोधित हो गया। तब नातान ने सच्चाई को प्रकट किया : वह दृष्टान्त दाऊद के अपने कार्यों का एक रूपक था। दाऊद ही वह धनी व्यक्ति था जिसने गरीब उरिय्याह से बेतशेबा को छीन लिया था। दाऊद को लम्बे समय तक अपने कार्यों की वास्तविकताओं का ज्ञान था। परन्तु वह अपने पापों को स्पष्ट रूप से तभी देख पाया जब उसने इन वास्तविकताओं को परमेश्वर के स्तर के समक्ष रखकर मापने के लिए अपने मनोभावों का प्रयोग किया।

हमारे मनोभाव इस बात को निर्धारित करने के लिए बहुत उपयोगी साधन सिद्ध हो सकते हैं कि हमारे आधुनिक जीवनों में परमेश्वर का वचन किस प्रकार लागू होता है। तरस या रहम की भावनाएं हमें जरुरतमंदों की सहायता करने के महत्व को देखने में मदद कर सकती हैं। आनंद के अनुभव मुश्किल समयों में भी परमेश्वर की भलाई को देखने और उसकी पुष्टि करने में योग्य बना सकते हैं। डर हमें पाप को दूर करने के तरीके ढूँढने में प्रेरित कर सकता है। दोष या ग्लानि की भावनाएं हमें ऐसे समयों के बारे में सचेत कर सकती हैं जब हम पाप में गिरे थे। प्रेम की भावनाएं हमें पूर्ती करने, रक्षा करने, डांटने और दया दिखाने के बारे में सिखा सकती हैं।

निस्संदेह, हमारी शेष अस्तित्व-संबंधी क्षमताओं के समान, हमारे मनोभाव भी पाप से भ्रष्ट हैं और गलती कर सकते हैं। इसीलिए हम लोगों से कहते हैं कि वे बिना सोचे-विचारे अपने मनोभावों का अनुसरण न करें। हमारी सारी भावनाएं धर्मी या सटीक नहीं होती। हमारे मनोभाव हमारे हृदयों की सम्पूर्णता को प्रकट करते हैं, हमारे पापों और हमारी गलत धारणाओं को भी। इसलिए हमें बहुत ही सावधानी से उन्हें पवित्र आत्मा की अगुवाई और परमेश्वर के वचन की प्रेरणा में समर्पित कर देना चाहिए, और परमेश्वर द्वारा दी गयी अन्य योग्यताओं और सामर्थ्यों के साथ उन्हें सांमजस्य में रखना चाहिए।

सारांश में, जब कभी भी हम इस बारे में सोचते हैं कि किस प्रकार वास्तविकताएं एक दूसरे से संबंध रखती हैं, या परमेश्वर के समक्ष हमारे कर्त्तव्य से किस प्रकार संबंध रखती हैं, तब हम उस ज्ञान को जांच रहे होते हैं जो हमने प्राप्त किया है। और इन जांचों या मूल्यांकनों में तर्क-वितर्क, विवेक और मनोभाव बहुत ही उपयोगी साधन हैं जो हमें ऐसे निष्कर्षों तक पहुँचने में सहायता कर सकते हैं जो परमेश्वर को प्रसन्न करें।

अच्छे का चुनाव करने की हमारी जांच में अब तक हमने कुछ ऐसी अस्तित्व-संबंधी क्षमताओं पर ध्यान दिया है जिन पर हम हमारी परिस्थिति के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के समय सबसे अधिक निर्भर रहते हैं, इसके साथ-साथ हमने उन मुख्य क्षमताओं को भी देखा है जिन पर हम उस ज्ञान को जांचने के समय निर्भर रहते हैं। अब हम अच्छे का चुनाव करने की प्रक्रिया के तीसरे खंड की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं : ज्ञान को लागू करना। हमारे अध्याय के इस खंड में, हम निर्णय लेने के कार्य से सबसे अधिक प्रत्यक्ष रूप से जुडी योग्यताओं और सामर्थ्यों पर ध्यान देंगे।

ज्ञान को लागू करना

एक बार जब हम स्वयं को, हमारी परिस्थिति को, और परमेश्वर के वचन को सही रूप में समझ लेते हैं, तो हम अंत में नैतिक निर्णय लेने की अवस्था में आ जाते हैं। इस बात का पता लगाना ही पर्याप्त नहीं है कि क्या करना चाहिए। हमें वास्तव में करने का निर्णय लेना है। हमें सही कार्य करने का विवेकपूर्ण निर्णय लेना है और उस निर्णय को पूरा करने का प्रयास करना है। जब हम यहाँ ज्ञान को लागू करने की बात करते हैं तो हमारे मन में यही बात है। हम ऐसे निर्णयों के बारे में बात कर रहे हैं जिनका परिणाम कार्यों में निकलता है।

ज्ञान को लागू करने की हमारी चर्चा दो क्षमताओं पर ध्यान केन्द्रित करेगी। पहला, हम हृदय की सामान्य क्षमता के बारे बात करेंगे। और दूसरा, हम इच्छा की विशेष क्षमता के बारे में बात करेंगे। आईये हृदय, जो इन दोनों में से अधिक सामान्य है, के साथ आरंभ करें।

हृदय

जैसा कि हमने पिछले अध्यायों में देखा है, हमारा हृदय हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व का केंद्र है। यह हमारे आंतरिक व्यक्तित्व की गहराई और हमारे उद्देश्यों का स्थान है- हमारे सभी आन्तरिक चरित्रों का संग्रह। बाइबल की भाषा में इन शब्दों में काफी समानता पाई जाती है, "हृदय," "मन," "विचार," "आत्मा," और "प्राण।"

परन्तु इस अध्याय में हमारे उद्देश्यों के लिए हम निर्णय लेने की प्रक्रिया में हमारे हृदय के कार्य पर ध्यान देंगें। अतः हम हृदय को नैतिक ज्ञान और नैतिक इच्छा के स्थान के रूप में परिभाषित करेंगे। यह हमारा सम्पूर्ण आन्तरिक व्यक्तित्व है जिसे उस दृष्टिकोण से समझा जाता है कि हम क्या जानते हैं और हमारे ज्ञान से हम क्या करते हैं।

हम हृदय के दो पहलुओं को देखेंगे जिससे कि हम यह देख सकें कि यह किस प्रकार से कार्य करता है जब हम नैतिक निर्णय लेते हैं। पहला, हम हृदय के समर्पणों, अर्थात् हमारी आधारभूत प्रतिबद्धताओं को जांचेंगे। दूसरा, हम हमारे हृदय की अभिलाषाओं को जांचेंगे, अर्थात् उन बातों को जिन्हें हम निर्णय लेते समय चाहते हैं। हम हमारे हृदयों के समर्पणों के साथ आरंभ करेंगे।

समर्पण

जीवन में हमारे बहुत सारे समर्पण होते हैं। हम कई लोगों के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं, जैसे कि हमारे परिवार, मित्र, सहकर्मी, और साथी मसीही। हम संगठनों के प्रति समर्पित होते हैं, जैसे कि कलिसियाएं, स्कूल, कम्पनियां, सरकारें, और खेल की टीमें भी। हम सिद्धांतों के प्रति भी समर्पित होते हैं, जैसे कि भलाई, ईमानदारी, सत्य, सुन्दरता, और बुद्धि। हम कई जीवनशैलियों, व्यवहार के कई प्रारूपों, और कई प्रकार की चीज़ों की पसंद के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं। चाहे यह कितना भी विचित्र क्यों न लगे, क्योंकि हम पतित मनुष्य हैं, इसलिए एक ऐसा भाव भी है जिसमें हम पाप के प्रति भी समर्पित होते हैं।

अब, निस्संदेह हम सब बातों के प्रति समान रूप में समर्पित नहीं होते। और एक मसीही के लिए एक समर्पण सबसे बड़ा है- परमेश्वर के प्रति हमारा समर्पण। यह समर्पण हमारे सम्पूर्ण जीवन की आधारभूत दिशा को संचालित करने वाला होना चाहिए, और हमारे अन्य सभी समर्पणों को इस सबसे आधारभूत समर्पण की सेवा करनी चाहिए। जैसे कि सुलेमान ने 1 राजा 8:61 में घोषणा की :

> **तुम्हारा मन हमारे परमेश्वर यहोवा की ओर ऐसी पूरी रीति से लगा रहे, कि उसकी विधियों पर चलते और उसकी आज्ञाएं मानते रहो। (1 राजा 8:61)**

जैसे कि भविष्यवक्ता हनानी ने 2 इतिहास 16:9 में सिखाया था :

> **यहोवा की दृष्टि सारी पृथ्वी पर इसलिये फिरती रहती है कि जिनका मन उसकी ओर निष्कपट रहता है, उनकी सहायता में वह अपना सामर्थ दिखाए। (2 इतिहास 16:9)**

समर्पण नैतिक शिक्षा में महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि एक ऐसा भाव है जिसमें वे हमारे सारे निर्णयों को संचालित करते हैं। और अधिक विशेष रूप में कहें तो हम उन समर्पणों के अनुसार चयन करते हैं जिसे चयन करते समय हम सबसे अधिक महसूस करते हैं। जब हमारे धर्मी समर्पण सबसे मजबूत होते हैं तो हम परमेश्वर के प्रति हमारे हृदय की प्रतिबद्धता के अनुसार कार्य करते हैं। परन्तु जब हम हमारे पापमय समर्पणों के समक्ष

समर्पित हो जाते हैं तो परमेश्वर हमारे व्यवहार को बुरा या दुष्ट कहता है। जैसा कि यीशु ने लूका 6:45 में कहा था :

> भला मनुष्य अपने मन के भले भण्डार से भली बातें निकालता है; और बुरा मनुष्य अपने मन के बुरे भण्डार से बुरी बातें निकालता है; क्योंकि जो मन में भरा है वही उसके मुंह पर आता है। (लूका 6:45)

यहाँ, यीशु ने हमारे समर्पणों को वे बातें कहा जो हमारे हृदय में बसी होती हैं। और हमारे समर्पण सदैव हमारे कार्यों में व्यक्त होते हैं। अतः, हम अच्छे कार्यों में परमेश्वर के प्रति हमारे समर्पण को व्यक्त करते हैं, और हम बुरे कार्यों में पाप के प्रति हमारे समर्पण को व्यक्त करते हैं।

क्योंकि पाप अभी भी हमारे अन्दर वास करता है, इसलिए हर मसीही के मिश्रित समर्पण होते हैं। हमारे कुछ समर्पण अच्छे होते हैं, जो परमेश्वर के प्रति हमारे समर्पण का ही हिस्सा होते हैं, परन्तु हमारे कुछ समर्पण बुरे होते हैं, जो हमारे हृदयों में पाप के फलस्वरूप होते हैं। अतः, जब हम बाइबल पर आधारित निर्णयों को लेने का कार्य करते हैं, तो हमें हमारे समर्पणों के प्रति बहुत ही जागरूक रहना चाहिए। हम पवित्र आत्मा के प्रति समर्पित रहते हैं जब वह हमारे भीतर कार्य करता है और हमारे सारे समर्पणों को उसके वचन के प्रति हमारे ज्ञान और हमारी अन्य क्षमताओं के योगदान के द्वारा परमेश्वर के चरित्र के सदृश्य बना देता है। और हमें उन समर्पणों को ठुकराना चाहिए और बदलने का प्रयास करना चाहिए जो पाप से निकलते हैं।

समर्पणों और प्रतिबद्धताओं के इस ज्ञान को मन में रखते हुए, हम हमारी अभिलाषाओं के बारे में सोचने के लिए तैयार हैं। हमारी चाहतें और लालसाएं किस प्रकार हमारे निर्णयों को प्रभावित करती हैं?

अभिलाषाएं

पवित्रशास्त्र दर्शाता है कि जिस प्रकार एक मसीही में मिश्रित समर्पण पाए जाते हैं, वैसे ही हमारे हृदय में अच्छी और बुरी दोनों अभिलाषाएं पाई जाती हैं। जब हम हमारे हृदयों को उन बातों पर लगाते हैं जिन्हें परमेश्वर प्रमाणित करता है, तो हमारी अभिलाषाएं अच्छी हैं। परन्तु जब हम हमारे हृदयों को उन बातों पर लगाते हैं, जिनकी वह निंदा करता है तो हमारी अभिलाषाएं बुरी हैं। उदाहरण के तौर पर, 2 तीमुथियुस 2:20-22 में पौलुस ने यह निर्देश दिया :

> बड़े घर में न केवल सोने-चांदी के, पर काठ और मिट्टी के बरतन भी होते हैं; कोई कोई आदर, और कोई कोई अनादर के लिये। यदि कोई अपने आप को इन से शुद्ध करेगा, तो वह आदर का बरतन, और पवित्र ठहरेगा; और स्वामी के काम आएगा, और हर भले काम के लिये तैयार होगा। जवानी की अभिलाषाओं से भाग; और जो शुद्ध मन से प्रभु का नाम लेते हैं, उन के साथ धर्म, और विश्वास, और प्रेम, और मेल-मिलाप का पीछा कर। (2 तीमुथियुस 2:20-22)

पौलुस ने सिखाया कि हमें हमारी बुरी अभिलाषाओं, अर्थात् हमारी लालसाएं जो हमारे भीतर निवास करने वाले पाप से प्रेरित होती हैं, से छुटकारा प्राप्त करने के द्वारा हमारे हृदयों को शुद्ध करना है। जब हम हमारे हृदयों को बुरी अभिलाषाओं से शुद्ध कर लेते हैं, तो हमारे भीतर केवल वही अभिलाषाएं होंगीं जो परमेश्वर को प्रसन्न करती हैं।

हमारे हृदयों को शुद्ध करना आसान नहीं है; पाप मजबूती से इसके विरुद्ध लड़ता है। वास्तव में, यह युद्ध इतना मुश्किल है कि हम अपनी सामर्थ इसे कभी नहीं जीत सकते। पवित्र आत्मा की शक्ति पर निर्भर रहने

के द्वारा ही हम इस लड़ाई को जीतने की आशा कर सकते हैं। परन्तु क्योंकि हम असिद्ध लोग हैं, इसलिए हम पवित्र आत्मा पर उस रीति से भरोसा रखने में भी असफल हो जाते हैं जैसा हमें रखना चाहिए। गलातियों 5:17 में पौलुस के शब्दों को सुनें :

> **क्योंकि शरीर आत्मा के विरोध में, और आत्मा शरीर के विरोध में लालसा करती है, और ये एक दूसरे के विरोधी हैं; इसलिये कि जो तुम करना चाहते हो वह न करने पाओ। (गलातियों 5:17)**

और रोमियों 7:15-18 में उसने लिखा :

> **जो मैं चाहता हूँ, वह नहीं किया करता, परन्तु जिस से मुझे घृणा आती है, वही करता हूँ... उसका करने वाला मैं नहीं, वरन पाप है, जो मुझ में बसा हुआ है... इच्छा तो मुझ में है, परन्तु भले काम मुझ से बन नहीं पड़ते। (रोमियों 7:15-18)**

इन पदों में पौलुस ने हमारी अच्छी और बुरी अभिलाषाओं के बीच अंतर स्पष्ट किया। एक ओर, हमारे भीतर आत्मिक अभिलाषाएं होती हैं, अर्थात् ऐसी अभिलाषाएं जो पवित्र आत्मा हमें देता है और जो परमेश्वर को प्रसन्न करती हैं। दूसरी ओर, हमारे भीतर पापमय अभिलाषाएं भी होती हैं जो हमारे पतित, पापमय स्वभाव से आती हैं। और जब भी हम कोई निर्णय लेते हैं तो ये दोनों अभिलाषाएं प्रभावशाली बनने के लिए आपस में युद्ध करती हैं। जब हम स्वयं को पापमय अभिलाषाओं के प्रति समर्पित कर देते हैं तो हमारे निर्णय बुरे होते हैं। परन्तु जब हम उन पापमय अभिलाषाओं का विरोध करते हैं और आत्मिक अभिलाषाओं के अनुसार कार्य करते हैं तो हमारे निर्णय अच्छे होते हैं। और दूसरा कोई विकल्प नहीं है। केवल दो प्रकार के निर्णय होते हैं : अच्छे और बुरे। हर अच्छा निर्णय पवित्र आत्मा की ओर से दी गयी अभिलाषाओं के अनुसार लिया जाता है, और हर बुरा निर्णय पापमय अभिलाषाओं के अनुसार लिया जाता है।

मसीही जीवन में हमारी सबसे बड़ी अभिलाषा सदैव परमेश्वर को प्रसन्न करना, और उसकी इच्छा को पूरी करना होनी चाहिए। हम इस वास्विकता से घृणा करते हैं कि हम पाप की अभिलाषा करते हैं। हमारे जीवनों की सम्पूर्णता के दृष्टिकोण से समझें तो हमारे पापमय निर्णय हमारी अभिलाषाओं के विरोधाभासी होते हैं। यद्यपि हम पाप की अभिलाषा नहीं करते, फिर भी हम पाप करने का चयन करते हैं।

परन्तु हमारे निर्णय के समय से सोचें तो हमारे निर्णय कभी भी हमारी अभिलाषाओं के विरोधाभासी नहीं होते। इस दृष्टिकोण से हम वही चुनते हैं जिसकी हम निर्णय लेने के समय सबसे अधिक अभिलाषा करते हैं। दूसरे शब्दों में, हम पाप को इसलिए चुनते हैं क्योंकि हम पाप की अभिलाषा करते हैं। जैसा कि हम याकूब 1:14-15 में पढ़ते हैं :

> **प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही अभिलाषा में खिंच कर, और फंस कर परीक्षा में पड़ता है। फिर अभिलाषा गर्भवती होकर पाप को जनती है। (याकूब 1:14-15)**

जब हम हमारे समर्पणों और अभिलाषाओं के आधार पर अपने हृदयों के बारे में सोचते हैं तो यह देखना आसान होता है कि नैतिक निर्णय लेने में हृदय मूल होता है। कभी-कभी हम अच्छे समर्पणों और अभिलाषाओं को क्रियान्वित करते हैं जिससे कि हम ऐसे निर्णय ले सकें जो सही रीति से परमेश्वर के वचन को हमारे जीवनों में लागू करें। अन्य समयों में, हम हमारे बुरे समर्पणों और अभिलाषाओं को क्रियान्वित करते हैं और परमेश्वर के वचन के अनुसार जीवन जीने को ठुकरा देते हैं। जैसा भी हो, ये अभिलाषाएं हमारे हृदय से उत्पन्न होती हैं।

एक ऐसी सामान्य क्षमता के रूप में हृदय के बारे में बात करने के बाद, जिसे हम ज्ञान को लागू करने के समय इस्तेमाल करते हैं, अब हम इच्छा की ओर देखने के लिए तैयार हैं जो कि नैतिक निर्णय लेने की एक और अधिक सटीक और विशिष्ट क्षमता है।

इच्छा

हमारी इच्छा निर्णय लेने की हमारी क्षमता है। यह हमारी इच्छाशक्ति है, निर्णय लेने की हमारी योग्यता है। अतः, हर बार जब हम निर्णय लेते हैं तो हम हमारी इच्छा का प्रयोग करते हैं।

हमारी अन्य सारी क्षमताओं के सामान हमारी इच्छा हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दृष्टिकोण है। अतः, हमें यह सोचने की गलती नहीं करनी चाहिए कि यह हमारी अन्य क्षमताओं और योग्यताओं की विरोधी है। बल्कि, इच्छा के बारे में बात करने का अर्थ है हमारे निर्णयों के दृष्टिकोण और खासकर अंतिम परिणाम के दृष्टिकोण से निर्णय लेने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को देखना।

निस्संदेह, सही निर्णय लेना प्रायः कठिन होता है हमारी इच्छा हमारे पतित स्वभाव से प्रभावित होती है। एक मसीही के लिए, इसका अर्थ है कि जहाँ पवित्र आत्मा हमें ऐसे निर्णय लेने में योग्य बनाता है जो परमेश्वर को प्रसन्न करें, वहीँ हमेशा यह सम्भावना भी बनी रहती है कि हमारे भीतर वास करने वाला पाप हमें पापमय निर्णय लेने के लिए भी लालायित करता है।

अब, यह यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि हमारी इच्छा सक्रिय या निष्क्रिय हो सकती है। अर्थात्, कभी-कभी हम निष्क्रिय अचेतन रूप में निर्णय लेते हैं, जैसे की हमारी किसी आदत के कारण। परन्तु अन्य समयों में, जिन नैतिक प्रश्नों का हम सामना करते हैं वे हमारे सक्रिय विचारों और सचेत निर्णयों की मांग करते हैं।

उदाहरण के लिए, सोचें जब मुझे एक कीमती गहने को चुराने का अवसर मिलता है तो मैं शायद अपनी इच्छा के सक्रिय रूप का इस्तेमाल कर सकता हूँ। जब मैं उस गहने को देखता हूँ तो मुझे एक सक्रिय, सचेत निर्णय लेना है कि क्या उसे चुराऊं या न चुराऊं। वास्तव में, हम यह भी कह सकते हैं कि हरेक उस नैतिक विषय को जिसे हम समस्या या असमंजस के रूप में देखते हैं, वह केवल इस कारण से हमसे हमारी इच्छा को सक्रिय रूप में इस्तेमाल करने की मांग करता है क्योंकि हम उसे एक समस्या के रूप में देखते हैं।

परन्तु कई ऐसे भी नैतिक विषय हैं जिसे हम निष्क्रिय, अचेतन रूप में क्रियान्वित करते हैं, जैसे कि वे जो हम हमारी आदत के अनुसार करते हैं, या जिनका प्रत्युत्तर हम बाध्यता के कारण देते हैं। उदाहरण के तौर पर, हमारी इच्छा कुछ हद तक निष्क्रिय हो सकती है जब हम नियमित रूप से कोई निर्णय लेते हैं, जैसे कि जब हम हमारे बच्चों को अनुशासित करते हैं। अब, किसी न किसी समय, अधिकांश अभिभावकों ने इस बात को सुनिश्चित करने के लिए अपनी इच्छा का सक्रिय रूप से इस्तेमाल किया है कि वे अपने बच्चों के लिए किस प्रकार के दंड का प्रयोग करेंगे, जैसे पिटाई, या कुछ सहूलियतों या विशेषाधिकारों को हटा देना, या अतिरिक्त कार्य देना। परन्तु जब वास्तव में अनुशासित करने का समय आता है, तो हम सदैव हमारे भिन्न विकल्पों की नैतिकता के बारे में नहीं सोचते। प्रायः, हम सामान्यतः आदत संबंधी बातों का अनुसरण करते हैं।

हमारी इच्छा निष्क्रिय, अचेतन रूप में भी कार्य करती है जब हम बाध्यता के कारण प्रत्युत्तर देते हैं। यहाँ हमारे मन में वे निर्णय हैं जो अनिमंत्रित हों या हमारे ऊपर थोपे गए हों। उदहारण के तौर पर, जब मैं एक पक्षी को देखता हूँ, तो मैं मानता हूँ कि यह परमेश्वर के द्वारा रचा गया है। यह ऐसी बात नहीं है जिसे मुझे अपने विवेक से सोचना पड़े, और ऐसी बातों के बारे में सोचना मेरी आदत भी नहीं है। बल्कि, यह एक ऐसी धारणा है जो अचानक मेरे अंदर आती है क्योंकि मैं परमेश्वर की सृष्टि में उसके हाथ को देखता हूँ। फिर भी, यह इच्छा

का एक कार्य है क्योंकि इसमें एक निर्णय शामिल होता है। इस विषय में निर्णय परमेश्वर को पक्षी के सृष्टिकर्त्ता के रूप में मानने का है।

अतः किसी न किसी रूप में, सक्रिय या निष्क्रिय भाव में हमारी इच्छा उन सब में शामिल होती है जो हम सोचते, कहते और करते हैं। यह वह क्षमता है जिसका इस्तेमाल हम हमारे जीवन के प्रत्येक निर्णय लेने में करते हैं। अतः, यदि हम चाहते हैं कि हमारे निर्णयों से परमेश्वर प्रसन्न हो तो हमें हर बार हमारी इच्छा को परमेश्वर के प्रति समर्पित करना आवश्यक है। हमारी इच्छा वही होनी चाहिए जिसकी आज्ञा परमेश्वर का वचन देता है, और हमें पवित्र आत्मा को अनुमति देनी आवश्यक है कि वह सकारात्मक रूपों में हमारी इच्छा को प्रभावित करने के लिए कार्य करे। जैसा पौलुस ने फिलिप्पियों 2:13 में लिखा :

> **क्योंकि परमेश्वर ही है, जिसने अपनी सुइच्छा निमित्त तुम्हारे मन में इच्छा और काम, दोनों बातों के करने का प्रभाव डाला है। (फिलिप्पियों 2:13)**

इस पूरे अध्याय में हमने देखा है कि परमेश्वर ने हमें बहुत सी अस्तित्व-संबंधी क्षमताएँ दी हैं जो अच्छी बातों को चुनने में महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा करती हैं। यदि हम उनमें से किसी एक को भी नजरअंदाज करते हैं, तो हम सही नैतिक निर्णय लेने में असमर्थ होने के जोखिम में पड़ जाते हैं। परन्तु इस बात के प्रति आश्वस्त होने के लिए कि हम इस बात को समझ लें कि ये सारी योग्यताएं और सामर्थ्य एक-दूसरे के साथ कैसे सांमजस्य में कार्य करती हैं, आइये उस समय के बारे में सोचें जब यीशु ने एक नैतिक निर्णय लेने के लिए इन सारी अस्तित्व-संबंधी योग्यताओं और सामर्थ्यों को क्रियान्वित किया था। मत्ती 12:9-13 में हम इस वर्णन को पढ़ते हैं :

> **[यीशु] उनकी सभा के घर में आया। और देखो, एक मनुष्य था, जिस का हाथ सूखा हुआ था; और उन्होंने उस पर दोष लगाने के लिये उस से पूछा, कि क्या सब्त के दिन चंगा करना उचित है? उस ने उन से कहा; तुम में ऐसा कौन है, जिस की एक ही भेड़ हो, और वह सब्त के दिन गड़हे में गिर जाए, तो वह उसे पकड़कर न निकाले? भला, मनुष्य का मूल्य भेड़ से कितना बढ़ कर है; इसलिये सब्त के दिन भलाई करना उचित है: तब उसने उस मनुष्य से कहा, अपना हाथ बढ़ा। उस ने बढ़ाया, और वह फिर दूसरे हाथ की नाईं अच्छा हो गया। (मत्ती 12:9-13)**

आइये इस घटना को हमारे अध्याय के आधार पर देखें। पहला, यीशु ने ज्ञान या जानकारी को प्राप्त किया। उसने यह देखने और पहचानने के लिए अपने अनुभव का प्रयोग किया कि जो मनुष्य उसके समक्ष खड़ा था उसका हाथ सूखा हुआ था। यीशु ने अपनी कल्पना का इस्तेमाल उस मनुष्य के हाथ को चंगा करने का लक्ष्य स्थापित करने और उन तरीकों के बारे में सोचने के लिए भी किया जिनमें वह फरीसियों द्वारा उठाये गए प्रश्नों का उत्तर दे सके।

दूसरा, यीशु ने अपने ज्ञान को जांचा। उसके तर्क-वितर्क ने सब्त के दिन भेड़ को बचाने के वैध कार्य और जिस कार्य के बारे में वह सोच रहा था, विशेष रूप से सब्त के दिन उस मनुष्य को चंगा करने, के बीच एक समानता को प्रकट किया। और उसके विवेक ने निष्कर्ष निकाला कि उस मनुष्य को चंगाई देना एक अच्छा कार्य होगा। उसके मनोभावों ने उस मनुष्य पर दया करने के लिए उसे प्रेरित किया।

तीसरा, यीशु ने अपने ज्ञान को लागू किया। उसने अपने हृदय में अच्छे कार्य को करने का निश्चय करने के द्वारा उस बात को लागू करना आरंभ किया। उसका सबसे बड़ा समर्पण परमेश्वर के प्रति था, और उसकी

सबसे बड़ी अभिलाषा ऐसा कार्य करना थी जिससे कि परमेश्वर को महिमा और सम्मान मिले। अंत में, यीशु ने अपनी इच्छा का प्रयोग उस व्यक्ति को चंगा करने का निर्णय लेने और उसे पूरा करने के लिए किया।

अतः, हम देखते हैं कि हमारे सारे नैतिक निर्णयों में ज्ञान को लागू करना अंतिम कार्य होता है। यह वह स्थान है जहाँ हमारा हृदय परमेश्वर के प्रति समर्पित रहने और उसे महिमा देने की चाहत रखने का निश्चय करता है। और यह वह स्थान है जहाँ हमारी इच्छा सोचने, बोलने, और परमेश्वर के वचन के अनुसार कार्य करने का चुनाव करती है।

निष्कर्ष

अच्छा चुनने के इस निर्णय में हमने हमारे निर्णय लेने की प्रक्रिया में तीन चरणों के आधार पर भिन्न अस्तित्व-संबंधी क्षमताओं, हमारी योग्यताओं और सामर्थ्यों को देखा है : ज्ञान को प्राप्त करने का चरण जहाँ हम जानकारी एकत्र करते हैं; ज्ञान को जांचने का चरण जहाँ हम हमारे एकत्र किये ज्ञान का मूल्यांकन करते हैं; और ज्ञान को लागू करने का चरण जहाँ हम हमारे नैतिक निर्णय लेते हैं और उन्हें क्रियान्वित करते हैं।

अच्छे का चुनाव करना प्रत्येक मसीही का लक्ष्य होना चाहिए। हम नैतिक शिक्षा का अध्ययन करते हैं क्योंकि हम सही निर्णय लेना चाहते हैं। हम परमेश्वर के वचन, हमारी आधुनिक परिस्थितियों, और अपने आपको जांचते हैं ताकि हम जान सकें कि परमेश्वर को प्रसन्न करने वाले निर्णय कैसे लिए जाते हैं। इस पूरी श्रृंखला में हमने इन सारे कारणों और अन्य बातों पर ध्यान देने के महत्त्व को देखा है। परन्तु अंत में, हमारे सारे अध्ययन के बाद, प्रत्येक नैतिक समस्या एक अस्तित्व-संबंधी निर्णय की ओर आती है : क्या आप वह चुनोगे जो अच्छा है? इस प्रश्न का आपका उत्तर निर्धारित करेगा कि क्या आपने सचमुच बाइबल पर आधारित निर्णय लिया है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।